The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 8 | August 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

योगाभ्यास में आहार की उपयोगिता का एक अवलोकन

आदित्य कुमार
शोध छात्र
शारीरिक शिक्षा विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Keywords:
धार्मिक परम्परा, श्रीमद्भगवत्गीता, आध्यात्मिक सफलता, योगसूत्र

ABSTRACT

आधुनिक युग में भी योग विद्या का प्रचार–प्रसार अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा है। इसका प्रायोजन आजकल शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति तक ही सकुंचित होता जा रहा है। जबकि योग कोई चिकित्सा पद्धति नहीं यह शरीर के मलों का निवारण की पद्धति नहीं, अपितु यह तो जीवन जीने की पद्धति है। इसको ''जीवन जीने की कला'' के रूप में अपने में उतारना चाहिये। यह मनुष्य को संसार में जीने का उत्तम मार्ग बताती है। मानव को संसार में जन्म के एक मात्र लक्ष्य मोक्ष (आत्म कल्याण) का हेतु है। श्रीमद्भगवत्गीता में विभिन्न ग्रन्थों, तन्त्रों में, उपनिषदों में भी इस विद्या के मूल उद्देश्य को समझाया गया है। परन्तु आजकल इसका उपयोग स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति हेतु हो रहा है निःसंदेह रोगों उपचार योगागों द्वारा हो सकता है। इस योग रूपी शस्त्र के द्वारा भौतिक के साथ आध्यात्मिक सफलता में आने वाले विघ्नों का मूल समेत नाश करके प्रत्येक क्षेत्र में अपना पथ प्रशस्त किया जा सकता है।

स्वास्थ्य रक्षा के लिए योग परम्परा में प्रचुर सामाग्री उपलब्ध है। दैनिक जीवन में स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए योग के साथ–साथ आहार आदि का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। भारतीय धार्मिक परम्परा में तो आहार शुद्धि को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। इसके संबंध में ये विश्वास भी है कि व्यक्ति जैसा भोजन करेगा, वैसे ही उसके विचार और कार्य होंगे जैसा कि कहा भी गया है–

ध्वान्तं भक्षयते दीपो कज्जलं च प्रसूयते।

यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा ।।

अर्थात्, दीपक अंधकार को खा जाता है और उसी के फलस्वरूप काजल की उत्पत्ति होती है। इसी से स्पष्ट होता है कि 'जैसा खायेगा अन्न वैसा होगा मन' तात्पर्य यह है कि आहार पर संपूर्ण स्वास्थ्य (मानसिक से आध्यात्मिक) निर्भर करता है और यह आहार प्रत्येक जीवधारी की प्रथम अनिवार्य आवश्यकता है। प्रत्येक जीवित प्राणी को जीवित एवं स्वस्थ रहने के लिये योग्य आहार की आवश्यकता होती है। आहार के आभाव में किसी के भी जीवन एवं अस्तित्व का बने रहना ही संभव नहीं है।

योग शब्द का अर्थ

पाणिनि ने योग शब्द की व्युत्पत्ति 'युजिर योगे' एवं 'युज् समाधौं' इन दो धातुओं से दी है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का प्रयोग अनेक अथों में किया गया है जैसे जोड़ना, मिलाना, मेल आदि। इसी आधार पर जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग कहलाता है। इसी संयोग की अवस्था को समाधि की संज्ञा दी जाती है जो कि जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था से प्राप्त होती है। यथा –

समाधिःसमतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः ।।

बशिष्ठसंहिता – 1/44

महर्षि पंतजलि जी ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। व्यास जी ने भी ''योगः समाधिः'' कहकर योग शब्द का अर्थ समाधि ही किया है। वाचस्पति जी का भी यही मत है। संस्कृत व्याकरण के आधार पर श्योगश शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की जा सकती है–

1. युज्यते एतद् इति योगः– इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्मकारक में योग शब्द का अर्थ चित्त की वह अवस्था है, जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है। यहाँ पर योग शब्द का उद्देश्यार्थ प्रयोग हुआ है।

2. युज्यते अनेन इति योगः– इस व्युत्पत्ति के अनुसार करण कारक में योग शब्द का अर्थ वह साधन है जिससे समस्त चित्तवृत्तियों में एकाग्रता लायी जातीं है। यहां योग शब्द साधनार्थ प्रयुक्त हुआ है। इस आधार पर योग के विभिन्न साधनों को जैसे हठ, मंत्र, भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि को हठयोग, मंत्रयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि के नाम से पुकारा जाता है।

3. युज्यते तस्मिन् इति योगः– इस व्युत्पति के अनुसार योग शब्द का अर्थ वह स्थान है जहाँ चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता उत्पन्न की

योग की परम्परा एवं इतिहास–

योग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, इसमें कोई शंका नहीं हो सकती लेकिन वह कितनी प्राचीन है उसको प्रारम्भ किसने किया? और कब किया? इन प्रश्नों का सीधा एक ही उत्तर देना शायद सम्भव नहीं होगा, परन्तु प्राचीन साहित्य में योग का प्रारम्भ किसने किया, इसके संबंध में उल्लेख मिलते हैं, जैसे गीता के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि मैंने इस योग का उपदेश सृष्टि के आरम्भ में सूर्य देवता को दिया था। सूर्य ने अपने पुत्र (वैवस्वत) मनु को वह योग सिखाया, मनु ने इक्ष्वाकु को बताया और फिर एक राजर्षियों की लम्बी परम्परा चली।

लोग भारतवर्ष में थे, परन्तु योग के सभी तथ्य एवं संकल्पनाओं का संग्रह करके उसका एक स्वतंत्र शास्त्र एवं दर्शन बनाकर उसकी प्रतिष्ठापना करने का कार्य नहीं किया गया था। वह कार्य पंतजलि ने ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के आसपास सम्पन्न किया, ऐसी विद्वानों की मान्यता है। उसके साथ योग के इतिहास का द्वितीय कालखण्ड आरम्भ हुआ।

दर्शनों का काल

इस काल में भारतीय दर्शन की अन्यान्य शाखाओं के सिद्धान्त एकत्रित रूप में सूत्रग्रन्थों में संग्रहीत किये गये। प्रत्येक दर्शन ने अपने सिद्धान्तों का मण्डन तथा अन्य दर्शनों का खण्डन किया। योगसूत्र के अलावा भगवद्गीता, योगवासिष्ठ, योगियाज्ञवल्क्य आदि की रचना भी इसी कालावधि में हुई, ऐसा मानते हैं। तंत्र, पुराण, स्मृतियों जैसे याज्ञवल्क्यस्मृति आदि जिनमें यंत्र, तंत्र, योग के सिद्धांत एवं आचारों का वर्णन मिलता है, वे भी इसी काल की देन हैं।

टीकाओं का काल

यह लगभग दसवीं शताब्दी तक जारी रहा। योगसूत्र पर व्यासभाष्य की रचना चौथी शताब्दी में हुई, ऐसा मानते हैं। उस भाष्य के आधार पर विज्ञान भिक्षु, भोजदेव, वाचस्पति मिश्र एवं नागोजी भट्ट ने अपनी टीकाएँ लिखीं। योग के सिद्धान्तों एवं मूलभूत मान्यताओं की विस्तार से चर्चा इन टीकाओं में पायी जाती है। भारतवर्ष के इतिहास का वह उत्कृष्ट समय था। विविध कला एवं विद्याओं का समुचित विकास हुआ। योग पर अनेक ग्रन्थ इस कालखण्ड में लिखे गये।

भक्ति एवं हठयोग का उत्कर्ष काल

यह कालखण्ड लगभग दसवीं शताब्दी से आरम्भ होकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक मान सकते हैं। इस काल में नाथ सम्प्रदाय का प्रसार हुआ। शारीरिक क्रियाओं द्वारा मन को वश में करना, यही उसकी विशेषता थी। भक्ति सम्प्रदाय के विकास का भी यही समय था।

आधुनिक काल

योग के आचार्य के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती का उल्लेख सर्वप्रथम करना उचित होगा। जिन्होंने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि के माध्यम से योग की भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करके स्पष्ट दिशानिर्देश किया। उनके शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द ने ध्यानयोग प्रकाश में उनकी शिक्षा को प्रस्तुत किया है। महर्षि दयानन्द की योग साधना को देखकर प्रभावित हुए बालक नरेन्द्र को आचार्य रामकृष्ण परमहंस ने दीक्षा देकर विवेकानन्द का स्वरूप प्रदान किया। स्वामी विवेकानन्द ने योग की परम्परा को आगे बढ़ाया। महर्षि रमन, श्री अरविन्द, जे. कृष्णामूर्ति, स्वामी शिवानन्द, स्वामी कुवल्यानन्द आदि ने इस परम्परा का विकास किया है, किन्तु स्वामी शिवानन्द तथा कुवल्यानन्द जी का योगदान महत्वपूर्ण है। स्वामी शिवानन्द के दिव्य जीवन संघ से प्रशिक्षित एवं प्रेरित होकर तथा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके शिष्यों ने भारत्तवर्ष तथा विदेशों में योग के प्रचार एवं प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

जीवन की इस तेज रफ्तार वाली जिंदगी में व्यस्त दिनचर्या और अनियमित खाद्य पदार्थों के सेवन में व्यस्त है वहीं जीवन को संतुलित और शांति बनाने का माध्यम प्राचीन योगिक आहार एक प्रकार का आहार है।

योगिक आहार एक प्रकार का आहार है जिसका दैनिक अनुपालन किसी भी व्यक्ति को ध्यान, शांति, योग की दुनिया में प्रवेश करने के लिए करना चाहिए। योगिक आहार के केन्द्र में शारीरिक आध्यात्मिकता है और इसमें शामिल सात्विक गुणों वाले खाद्य पदार्थ शारीरिक ऊर्जा को बढ़ाते है और साथ ही मन तथा शरीर को संतुलित रखते हैं।

योगिक आहार के स्वास्थ्य लाभ

1. वजन घटाने में सहायक– ताजे फल, सब्जियाँ और अनाज योगिक आहार में शामिल होते है और ये सभी पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, जो वजन घटाने में सहायक है।

2. ऊर्जा वृद्धि– योगिक आहार से व्यक्ति को मानसिक स्थिति में बहुत महत्वपूर्ण सुधार हो सकता है। यह आहार व्यक्ति को शांत और तनावमुक्त बनाता है और साथ ही इसका शारीरिक और अध्यात्मिक ऊर्जा दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

3. पाचन तंत्र में सुधार– फल और साबुत अनाज फाइबर से युक्त होते है। यह योगिक आहार आंत के स्वास्थ्य में सुधार करता है।

यह योगिक आहार अभ्यार्थियों का मार्गदशर्न करता है जिससे सद्भाव और कल्याण का जीवन मिलता है। योग का उद्देश्य मन और शरीर में संतुलन लाना है और संतुलित आहार सामान्य रूप से अच्छे स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण है।

हमारे शरीर को संतुलित आहार से उचित पोषक तत्व प्राप्त होते है। ताकि ऊर्जा का उच्च स्तर बना रहे। आसन और प्राणायाम को कुशलतापूर्वक करने के लिए, आपको ऊर्जा की आश्यकता होती है। साबुत अनाज, फल और सब्जियां पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ है जो आपकी ऊर्जा को बढ़ाते है और आपको लम्बे समय तक योग का अभ्यास करने में सक्षम बनाते है।

आहार क्या है?

उपयुक्त आहार ही शरीर के समुचित विकास तथा सुख एवं स्वास्थ्य का हेतु है। हितकर आहार को पथ्य एवं अहितकर आहार को अपथ्य कहकर पुकारते हैं। आहार हमें ठोस एवं द्रव्य दोनों रूपों में प्राप्त होता है। जो शरीर में पहुँच कर पाचन, तथा चयापचय के बाद शरीर को शक्ति प्रदान कर शरीर की वृद्धि विकास के साथ शारीरिक क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार आहार हमारे शरीर का अभिन्न अंग है। इसके बिना जीवन यापन दूभर हो जाता है।

आहार की परिभाषा

"आह्रियते अन्ननलिकया यत्तदाहारः" के अनुसार शरीर के अन्ननलिका मार्ग से जो पदार्थ हम ग्रहण करते हैं, उसी पदार्थ को आहार कहते हैं। लेकिन सभी पदार्थों को जो अन्नमार्ग से हम ग्रहण करते हैं, उन सभी को आहार की संज्ञा नहीं दे सकते। उन्हीं पदाथों को हम कह सकते हैं जिनको अन्न मार्ग से ग्रहण किये जाने पर–

1. जीवनीशक्ति उत्पन्न होती हो,

2. धातुओं का पोषण, रक्षा एवं क्षतिपूर्ति होती हो,

3. जीवन की प्रक्रियाओं का संयमन होता हो, और

4. शरीर के महत्वपूर्ण अंगों की उत्पत्ति में सहायक हो।

आहार का महत्व–

आहार हमारे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। अच्छे भोजन के द्वारा हमें अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। अतः भोजन नियमित रूप से आवश्यकतानुसार ग्रहण करना चाहिये। इससे दैहिक्त कोशिकाओं की टूट–फूट की मरम्मत होती है। एवं इसी से ही खत बनता है और स्वत से ही दैहिक अव्ययों की वृद्धि एवं पुष्टि होती है हमारा आहार भी पोषक तत्वों से युक्त होना चाहियें। इससे विभिनन पोषक तत्त्वों को ग्रहण करने से शरीर विभिन्न रोगों से दूर रहकर स्वस्थ रहकर अपनी विभिन्न क्रियाएँ भलि–भांति से करता रहता है। इस सबके बाद भी भोजन जीवन के लिए है न कि जीवन भोजन के लिए अतः भोजन न तो आवश्यकता से कम ही करना चाहिये और नहीं आवश्यकता से अधिक। अतः आवश्यकतानुसार, निश्चित समय पर निश्चित मात्रा में स्वच्छ स्थान पर विभिन्न तत्वों की उचित मात्रा से युक्त भोजन ही प्रतिदिन करना चाहिये।

खाद्य पदार्थ

मानव अपनी भूख मिटाने या भूख लगने पर जो कुछ खाता है वह खाद्य पदार्थ है। समस्त खाद्य सामग्री वनस्पतियों से प्राप्त होती है, अतः उसका योग–दान अपूर्व है। विश्व की अधिकांश जनसंख्या खाद्यान्न, फल, मसाले, सब्जियाँ आदि के रूप में वनस्पति वस्तुओं का उपभोग करती है। खाद्य पदार्थ अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जैसे तरल एवं ठोस, कुछ निर्मित किये जाते हैं; कुछ प्रकृति द्वारा उपहार में मिलते हैं। सभी अनाजों के दानों की रचना एक सी होती है परन्तु दानों का आकार–प्रकार रंग एवं गुण भिन्न होते हैं जिनके कारण उनको अलग–अलग पदार्थों में विभक्त किया जाता है। पोषक तत्वों के आधार पर कुछ में ऊर्जा प्रधान, कुछ में प्रोटीन, लौह खनिज आदि की प्रधानता होती है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान समिति द्वारा भोज्य तत्वों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें 100 ग्राम आहार पदार्थ में विद्यमान भोज्य तत्वों की मात्रा निश्चित की गई है। इससे ज्ञात होता है किस भोज्य पदार्थ में पौष्टिक तत्व कम या अधिक हैं।

सन्तुलित आहार

प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार इंजन को चलने के लिए उष्मा की आवश्यकता होती है और उष्मा कोयले से प्राप्त होती है। इसी प्रकार शरीर के संतुलन हेतु आहार की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि आहार से ही हमें उष्मा की प्राप्ति होती है। अतएव

प्रत्येक मानव को ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमें सभी आवश्यक पोषक तत्व मौजूद हो, जिससे शरीर की आवश्यकता की पूर्ति हो तथा शरीर स्वास्थ्य रह सके। ऐसा आहार ही संतुलित आहार कहलाता है। संतुलित आहार का आशय अधिक मंहगा भोजन करना नहीं है। बल्कि सस्ती सामग्री को यदि उचित प्रकार से उपयोग में लाया जाये तो वह संतुलित आहार बन सकता है।

संतुलित आहार की परिभाषा –

श्रेष्ठ स्वास्थ्य और रोगों के संक्रमण रोकने हेतु पोषण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है और पोषण हमें सन्तुलित आहार से प्राप्त होता है।

''संन्तुलित आहार वह है, जिसमें सुरक्षात्मक आधार पर उचित मात्रा में व्यक्ति को सभी पोषक तत्व आवश्यक मात्रा में प्राप्त हो जाएं''।

(1) वह आहार जो गुण तथा परिणाम में संतुलित हो एवं शारीरिक वृद्धि विकास और स्वास्थ्य को ठीक रखें तथा शरीर की समस्त क्रियाओं को नियंत्रित रखता है वही संतुलित आहार है।

(2) विभिन्न खाद्य पदार्थों से निर्मित वह आहार जो शरीर को सभी पौष्टिक तत्व उसकी न्यूनतम शारीरिक आवश्यकताओं के अनुपात में प्रदान करता है, सन्तुलित आहार कहलाता है।

की पूर्ति करता है तथा इससे व्यक्ति स्वस्थ्य रहता है। उसकी क्रियायें सुचारू रूप से सम्पन्न होती है। वांछित कार्य, शक्ति तथा क्षमता प्रदान करता है, ऊर्जा उत्पादित करता है, कार्य करने का उत्साह और उल्लास बनाये रखता है तथा व्यवित्त के शरीर स्वास्थ्य क्षमता को सुदृढ़ बनाये रखता है। जिससे शरीर रोग के निवारण में सक्षम बना रहे।

सन्तुलित आहार के उद्देश्य –

शरीर को शक्ति, गर्मी, वृद्धि, रोगों से रक्षा तथा शारीरिक संस्थान पर नियन्त्रण रखता है। सन्तुलित आहार मानव स्वास्थ्य के लिए अनुकूल एवं उत्तम भाना जाता है। इसके अन्तर्गत प्रोटीन, कार्बोज, वसा, विटामिन तथा लवणों का होना अनिवार्य है। संतुलित आहार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग–अलग होता है।

1. आयु– प्रोढ़ों की अपेक्षा बच्चों के शरीर में भोज्य तत्वों की आवश्यकता अधिक होती है, क्योंकि यह शक्ति के साथ शरीरिक वृद्धि भी करता है। वृद्धा अवस्था में आहार की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि उस समय मनुष्य की पाचन शक्ति शिथिल पड़ जाती है तथा शरीर भी कम कार्य करता है।

2. लिंग– पुरूष और स्त्रियों की शारीरिक रचना में भिन्नता होती है। पुरूष अधिक लम्बे, भार वाले होने के कारण उन्हें स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आहार की आवश्यकता होती है। परन्तु गर्भावस्था एवं स्तनपान की दशा में स्त्रियों को अधिक एवं विशेष आहार की आवश्यकता होती है।

3. शरीर का आकार– ठिगने, दुबले, पतले व्यक्ति की अपेक्षा लम्बे भारी शरीर वाले को अधिक आहार की आवश्यकता होती है।

4. मौसम – आहार की मात्रा मौसम और जलवायु पर निर्भर करती है। ठण्डे प्रदेशों के निवासियों को गर्म प्रदेश के लोगों की अपेक्षा अधिक आहार देना चाहिए, क्योंकि ठण्डे क्षेत्रों में ताप का उपभोग अधिक होता है तथा शारीरिक एवं मानसिक कार्य भी अधिक करते हैं। गर्म मौसम में भूख कम प्यास अधिक लगती है। अतः हमें कम आहार की मात्रा चाहिए।

5. व्यवसाय – व्यवसाय के आधार पर मानव को तीन वर्गों में रखा जा सकता है–

प्राचीन ग्रन्थों में आहार

तैत्तीय उपनिषद में आहार का वर्णन

इस पृथ्वी पर जितने भी जीव है वास्तव में वे अन्न से ही जन्मे हैं और अन्न के कारण ही जीवित है और अन्त में इसी में ही विलीन हो जाते हैं, वस्तुतः अन्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है इसलिये इसे औषधि का स्वरूप कहा जाता है जो अन्न को ब्रह्म मानकर उपासना करता है निश्चय ही उसे सभी प्रकार के अन्न प्राप्त होते है। सभी जीव अन्न से ही जन्मे हैं और अन्न से ही विकसित होते है।

चरक संहिता मे अन्न का वर्णन–

ऐसे समस्त खाद्य पदार्थ एवं पेय पदार्थ जिनके गन्ध, स्वाद, स्पर्श, इंन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाले हो और जो स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद हो। उनका नियमानुसार सेवन ही प्राणीमात्र के जीवन का आधार है। इन भोज्य पदार्थों के सेवन का प्रभाव स्पष्ट किया जा सकता है। यदि उनका उपभोग विधिपूर्वक किया जाय तो वे जठाराग्नि हेतु ईंधन प्रदान करते है शारीरिक एवं मानसिक बल प्रदान करते है तथा इंन्द्रियों को सुख प्रदान करते है अन्यथा वे हानिकारक होते है। मात्रा और समय को ध्यान में रखकर आत्मानुशासिक व्यक्ति नित्य प्रति इस प्रकार के आहार का सेवन कर सकता है। क्यों कि यह चयापचय सहित पाचन की आन्तरिक शक्ति के लिये लाभकारी है यज्ञ करने वाले व्यक्ति की तरह जो व्यक्ति जठराग्नि के लिये लाभप्रद आहार ग्रहण करता है।

घेरण्ड संहिता में अन्न का वर्णन–

योगाभ्यासी की भोजन व्यवस्था उचित होनी चाहिए। अन्यथा उसे अभ्यास का पूर्ण लाभ नही होता प्रतिकूल भोजन लेने पर कुछ रोगों ग्रस्त होने की सम्भावना होती है अतिशीतल गुणों से युक्त या अति उष्ण गुणों से युक्त आहार योगी के लिये वर्णित है उपवास भी योगी के लिये वर्जित है।

तिरुकुरूल के अनुसार अन्न का वर्णन–

' जो व्यक्ति पूर्ण तृप्ति से थोड़ा पहले ही खाना बन्द कर दे वह व्यक्ति भोजन का अधिक आनन्द उठाता है। अधिक भोजन करने वाला. सदैव रोग को आमन्त्रित करता है यदि व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के अनुसार उचित आहार करना और नहीं कहना सीख ले तो अनेक कष्टों से वो बच सकता है अतः अभ्यास के रूप में अपने को अधिक आहार करने से रोकिए अज्ञानी मनुष्य ही अपनी पाचन क्षमता से अधिक भोजन ग्रहण करता है।

यौगिक आहार

यौगिक आहार की चर्चा अनेक ग्रंथों में की गई है सभी में मुख्य रूप से परिमित या युक्त आहार के बारे में कहा गया है युक्ताहार को कुछ ग्रन्थों में मिताहार भी कहा गया है। मिताहार का अर्थ है नपा–तुला भोजन, भर पेट भोजन करने की जो मात्रा होगी उससे कुछ कम खाना, यह मिताहार का तात्पर्य है इसका स्पष्ट उल्लेख योग के ग्रन्थों में जैसे–योग कुण्डल्योपनिषद में स्पष्ट मिलता है। योगी को हमेशा अपने भर पेट भोजन की मात्रा का एक चौथाई हिस्सा छोड़ देना चाहिये।

आहारीय द्रव्य संरचना

इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु की रचना आकाश, वायु, तेजस, जल तथा पृथ्वी– इन पंचमहाभूतों के गेल से हुई है। ठीक इसी प्रकार, प्रत्येक द्रव्य की संरचना भी पंचमहाभूतों के सम्मिश्रण से ही हुई है। किसी भी द्रव्य के आकार व शक्ल के आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन है कि उसमें किन–किन महाभूतों की प्रधानता है। अन्य बातों के साथ–साथ किसी द्रव्य की भौतिक संरचना को जानने के लिए उसके रस (स्वाद) को आधार बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि द्रव्य या औषधि का रस मधुर है, तो यह माना जाता है कि इस में पृथ्वी और जल महाभूतों की प्रधानता है।

निष्कर्ष

संसार में जिस प्राणी का जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है, परन्तु व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की उचित देखभाल कर अपने जीवन को सुखी एवं सार्थक बना सकता है। अतः स्वास्थ्य संवर्धन और शरीर सौष्ठव की और विशेष ध्यान देने की व्यक्तिगत आवश्यकता है। इस दिशा में जागरुकता होने से सामाजिक स्वास्थ्य सुदृढ़ होगा, जिससे एक बलशाली राष्ट्र की छवि विश्व के समक्ष बनेगी। समाज दीर्घायु होगा, और वैश्विक दौड़ में देश आगे होगा। इस परिकल्पना को इस लघु शोध प्रबंध के माध्यम से एक अच्छे निष्कर्ष की प्राप्ति हेतु उपक्रम के रूप में पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष स्वरूप योग एवं आहारश विषय के अन्तर्गत संक्षेप में श्योगश का प्राचीन एवं नवीन स्वरूप तथा आहार के अन्तर्गत परम्परागत आहार (प्राचीन आहार) एवं आधुनिक वैज्ञानिक आहार को समझाने का प्रयास किया गया है। आशा है कि इससे पाठकगण अवश्यमेव ही लाभांवित होंगे।

संतुलित आहार के पाचन हेतु भी शारीरिक चेष्टाएँ करनी पड़ती हैं। जिस प्रकार जीवन रक्षा हेतु भोजन आवश्यक है उसी प्रकार व्यायाम को स्वास्थ्य संजीवनी कह सकते हैं। जिस प्रकार चाबी के बिना घड़ी नहीं चलती उसी प्रकार व्यायाम के बिना शरीर नहीं चल सकता।

व्यायाम से शरीर में आहार द्वारा ग्रहण किया गया विरुद्ध अन्न भी शीघ्र पच जाता है।

विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ।।

व्यायाम में भी यौगिक व्यायाम का दोहरा लाभ है एक और आसनों से शरीर बलिष्ठ और रोग रहित होता है तो दूसरी ओर आत्मिक उन्नति होती है। अतः उचित आहार के साथ–साथ उचित व्यायाम भी आवश्यक है।

इसी को ध्यान में रखते हुये कुछ योगाभ्यास आगे दर्शाये गये हैं। जिनसे पाठकगण पर्याप्त लाभ प्राप्त कर स्वस्थ रह सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1- Yoga Life & Smt. A.B. Meenakshi Devi Pondicherry

2. स्वस्थवृत्त, डॉ. रामहर्ष सिंह, केन्द्रीय परिषद, नई दिल्ली

3. योग मनोविज्ञान डॉ. शांति प्रकाश आत्रे योग पब्लिकेशन्स, वाराणसी (1963)

4. योग परिचय, डॉ. पीताम्बर झा, गुप्ता प्रकाशन, नई दिल्ली (1989)
5. साधारण रोगों की यौगिक एवं प्राङतिक, डॉ. गणेशशंकर, केंद्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, चिकित्सा अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
6. व्यवहारिक योग, डॉ. कालीदास जोशी, मण्प्रण हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (2002)
7. योग के सिद्धांत एवं अभ्यास, डॉ. कालीदास जोशी एवं गणेश शंकर, मण्प्रण हिन्दी ग्रंथ अकादमी (1995)
8. आयुर्वेद का सैद्धांतिक अध्ययन, भगवानदास एवं डॉ. कंचन गुप्ता, कान्सेप्ट पब्लिकेशन कंपनी
9. आरोग्यांक, गीता प्रेस गोरखपुर
10. स्वास्थ्य रक्षा के प्राङुतिक उपाय, डॉ. ओमप्रकाश 'आनंद', स्वस्थ साहित्य प्रकाशन
11. वैज्ञानिक योगासन और स्वास्थ्य, डॉ. सत्यपाल, किताब घर, नई दिल्ली (2000)
12. शरीर विज्ञान और योगासन, डॉ. मकरंद मधुकर गोरे, कंचन प्रकाशनण लोनावाला (2004)
13. रोग और योग, स्वामी सत्यानंद सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (2002)
14. घेरण्ड संहिता, स्वामी निरंजनानंद सररवती, बिहार योग भारती, मुंगेर (1997)
15. जीने की कला, डॉ. बलदेव सहाय, राजरथान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर (2004)
16. योग क्या है?, स्वामी पवित्रानंद, अद्वैत आश्रम, कोलकाता (1999)
17- हठप्रदीपिका, स्वामी दिगम्बर जी एवं डॉ. पीताम्बर झा, श्रीमन्माथव योग मंदिर समिति, कैवल्यधाम लोनावाला (2001)
18- योग दर्शन योग औपनिषदीय दृष्टिकोण, परमहंस निरंजनानंद, श्री पंचदसनाम परमहंस अलखवाड़ा, देवघर (1994)